संगीत का उद्भव व विकास

डॉ0 हेमा दानी*

सारांशः

भारतीय सभ्यता व संस्कृति प्राचीनतम् है। संस्कृति के उद्गम व विकास के साथ ही संगीत के उद्गम व विकास का क्रम आरम्भ हुआ है। भारतीय मानव ने युग–युगान्तर की यात्रा करते हुए व्यक्तिगत जीवन के साथ सभ्यता, संस्कृति व संगीत को उत्कर्ष प्रदान किया है।

संगीत का विकास मानव जाति के विकास से जुड़ा है इसलिए संगीत का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन मानव सभ्यता का इतिहास। सभ्यता के विकास के साथ–साथ संगीत भी उन्नत होता रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानव का उद्भव इस पृथ्वी पर हुआ, तो वह असभ्य व जंगली था, किन्तु संगीत से उसे प्रेम था, क्योंकि संगीत उसके अंतःकरण में निहित था। कण्ठ मानव के लिए ईश्वर की एक सहज और स्वभाविक देन है। यही उसके गीत एवं वाद्य के निर्माण को तथा उसके स्वर क्षेत्र को निर्धारित करता है। मनुष्य में अन्य जंगली प्राणियों की अपेक्षा सोचने व समझने के लिए बुद्धि थी और उसने अपनी बुद्धि के बल पर प्राकृतिक व पशु–पक्षियों की ध्वनियों का अनुकरण अपने कण्ठ से किया, तथा प्रारम्भ में मनुष्य को संगीत की प्रेरणा प्रकृति से ही प्राप्त हुई। आदिमानव का चिल्लाना, रोना, हँसना, नृत्य करते समय उछलना, कूदना व अपने नंगे शरीर के विभिन्न अंगो पेट, छाती, जाँघ में हाथों द्वारा आघात करके ध्वनि निकालना आदि ये सभी ऐसी स्वाभाविक क्रियायें थी, जिन्होंने संगीत रचना की कहानी को एक प्रारम्भिक रूप दिया।[1]

प्रकृति व परिवेश में मानव को जो कुछ भी सीखने के लिए मिला उसमें नये–नये अनुभवों का समावेश होता गया। मनुष्य की एकान्त में अथवा खुशी हासिल करने के लिए गुनगुनाने की प्रकृति अनादि है।

ध्वनि का पर्यायवाची नाद व आवाज है। नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा उद्भूत होती है। भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है।

आदिकाल में मनुष्य जब 'शब्द' या 'भाषा' का निर्माण नहीं कर पाया था, तब भी वह अपनी ध्वनि–विकार से अपने भावों को व्यक्त करता था। इस ध्वनि विकार का अति प्राचीन नाम 'स्तोभ' था। 'स्तोभ' की ध्वनि समान रूप से अहा, हो, हाउ, ओहा, हे, ल, ल, य, ल, हुम्, हाँ, हाँ इत्यादि है। शब्दों के अभाव में पहले पहल इन्ही स्तोभों में मनुष्य का गान जगत् में प्रतिध्वनित हुआ।[2]

अतः यह स्पष्ट होता है कि जब मनुष्य 'शब्द' का निर्माण नहीं कर पाया था, तब भी उसके हृदय के भाव स्वरों में गूँज उठते थे। प्रारम्भ में मानव के भाव भी अपरिपक्व थे धीरे–धीरे उनमें परिष्कार हुआ और अभिव्यक्ति के प्रयोग में भी भिन्नता आने लगी तथा संगीत का विकास होने लगा।

आदिम युग के जीवन यापन व बर्बरता की स्थिति से उभरकर जब मनुष्य ने अपनी सुरक्षा, सुविधा व समाजीकरण की ओर प्रथम पग उठाया तभी से वह सभ्य होने लगा और समाज में सभ्य मनुष्य के रूप में पहचाना जाने लगा। जैसे–जैसे सभ्यता का विकास हुआ संगीत भी उसके

अनुकूल विकास को प्राप्त करता रहा। मनुष्य की बढ़ती हुई इच्छाओं व अभिलाषाओं ने उसे संगीत कला, समाज, सम्बन्धों व जीवन शैली को पहचानने व उसको अपनाने में सहायता दी।

संगीत की विकसित एवं परिष्कृत शैली सभ्यता के विकास के साथ ही सम्भव हो सकती है। इसलिए संगीत के विकास को उससे अलग नहीं किया जा सकता है। स्पष्ट है कि संगीत कला का उद्भव इस पृथ्वी पर सृष्टि के प्रारम्भ से ही हो चुका था तथा मानव के प्रयत्नों द्वारा संगीत कला विभिन्न युगों में विकसित होती गयी।

आदिम युग की सभ्यता से लेकर वैदिक युग की सभ्यता तक पहुँचने में मानव को विकास की एक लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी तथा वैदिक काल में सर्वप्रथम गीत के लिए 'साम' शब्द का प्रयोग हुआ, 'साम' गान के अन्तर्गत हाउ, हाउ आदि 'स्तोभ' संज्ञक शब्दों का बाहुल्य पाया जाता है, जो उसकी लौकिक व्युत्पत्ति का द्योतक माना जा सकता है। यह 'साम' गान ईश्वर के प्रति मंत्रों द्वारा उपासना का पथ था। 'साम' गायन के साथ देवताओं

*शोध छात्रा, संगीत विभाग, डी. एस. बी. परिसर नैनीताल

की पूजा एवं ध्यान में होम यज्ञादि किए जाते थे। 'साम' गान का प्रथम विकास प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा हुआ तथा ऋषि कुलों एवं गुरुकुलों में शिक्षित लोगों ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति व संगीत के विकास में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया है।

श्रीमद्भगवद गीता में उल्लेखित है, ''वेदनां साम वेदोऽस्मि'' अर्थात् वेदों में संगीत रूपी सामवेद मेरा ही स्वरूप है। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि संगीत को ईश्वरीय स्वरूप की तरह श्रेष्ठ माना गया है।

प्राचीन काल से ही संगीत दो धाराओं में प्रवाहित हुआ, एक धारा जिसमें संगीत कला का परिष्कृत एवं परिमार्जित रूप था और दूसरी धारा, जो जनसाधारण की सहज अभिव्यक्ति एवं रुचि के अनुकूल थी। इन्हीं को हमारे संगीत के प्राचीन ग्रन्थों में गान्धर्व एवं गान तथा मार्गी एवं देशी नामों से अभिहित किया गया था, यही दो धाराएँ आज के संगीत जगत में भी है।

मार्गीय संगीत का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है, तथा यह संगीत शाश्वत नियमों से बँधा है। दूसरी ओर देशी संगीत जो लोक रुचि के अनुसार परिवर्तित होता है। हमारे संगीत के परिवर्तनशील रूप को 'देशी' शब्द से सहज ही परिभाषित किया जा सकता है, क्योंकि वह समुदायों व समाजों की अभिरुचि के अनुसार निरन्तर बदलता रहता है।

सामवेद भारतीय संगीत कला का प्राचीनतम् निग्दर्शन है। यज्ञ याग जैसे धार्मिक समारोहों से तथा समाज के उच्च वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण उसमें संस्कार तथा नियमबद्धता की मात्रा बढ़ गई और उसे शिष्ट्सम्मत मार्ग संगीत का स्वरूप प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त लौकिक समारोहों परगीत, वाद्य तथा नृत्य का आयोजन बराबर किया जाता रहा और यह जनजीवन की रुचि के अनुरूप था वह देशी संगीत रहा है।

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसमें धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा धार्मिक संस्कृति का प्रत्येक पक्ष संगीत से जुड़ा है। ईश्वर प्राप्ति व साधना मार्ग का प्रधान माध्यम संगीत को माना गया है।

भारतीय संगीत में आध्यात्मिकता का प्रभाव भी प्रचुर मात्रा में दिखाई देता है। संगीत का धर्म से सम्बन्ध होने के कारण यह परमपिता परमेश्वर से भी जुड़ा रहा है। संगीत मानव के लिए नैसर्गिक है, किन्तु धार्मिक तथ्यों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हमारी संगीत कला के आदि प्रेरक और उपदेशक देवी–देवता रहे हैं। शिव, ब्रह्मा, सरस्वती, नारद, गन्धर्व और किन्नर आदि देवों का सम्बन्ध संगीत से रहा है।

एक मतानुसार संगीत की उत्पत्ति आरम्भ में वेदों के निर्माता ब्रह्मा जी द्वारा हुई। ब्रह्मा जी से संगीत कला का ज्ञान महादेव जी को प्राप्त हुआ, तथा महादेव जी के द्वारा यह देवी सरस्वती को प्राप्त हुई। सरस्वती जी को संगीत और साहित्य की अधिष्ठात्री माना गया है। फिर सरस्वती जी से संगीत, साहित्य और कला का ज्ञान नारद जी को प्राप्त हुआ। नारद जी ने स्वर्ग के गन्धर्वों, किन्नरों एवं अप्सराओं को संगीत की शिक्षा दी। वहाँ से ही भरत, नारद और हनुमान प्रभृति ऋषि संगीत कला में पारंगत होकर भूलोक पर संगीत कला के प्रचारार्थ अवतीर्ण हुए।[3]

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि संगीत कला पहले ब्रह्मा जी के पास थी तथा अन्त में नारद जी के द्वारा संगीत का प्रचार इस पृथ्वी पर हुआ। नारद जी को नर तथा देव के बीच का दूत माना गया है। ऐसी भी किवदन्ती है कि नारद जी ने अनेक वर्षों तक योग साधना की और तब शंकर जी ने उन पर प्रसन्न होकर उन्हें यह वरदान दिया कि गीत वाद्य द्वारा यह सदा उनके अनुगत रहेंगे। स्वयं महादेव नृत्य गीतादि से परिपूर्ण थे। नारद संहिता में कहा गया है कि संगीत ही ईश्वर प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है।[4]

भारतीय संगीत की जड़े धर्म और संस्कृति में काफी गहराई तक समाई हुई हैं। स्वर को आत्मा का नाद व आत्मा को ईश्वर का स्वरूप माना गया है। ऋषि मुनि व तपस्वी लोग ईश्वर उपासना के गीतो व मन्त्रों का उच्चारण संगीत की ध्वनि में किया करते थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति व संगीत का माध्यम नाद है।

नाद दो प्रकार का होता है – अनाहत और आहत

अनाहत नाद बिना किसी आघात के होता है। वह संगीत के लिए उपयोगी नही होता क्योंकि वह रंजक नहीं है। उसका गुरु के द्वारा उपदिष्ट मार्ग से योगी लोग अभ्यास करते हैं। वह मुक्तिदायक होता है। संगीत श्रवणगोचर होने से उसका सम्बन्ध आहत नाद से ही होना स्वाभाविक है तथा वह रंजकता पैदा करता है।[5]

ईश्वर की उपासना के साधनों को भी संगीतोत्पत्ति का आधार मानते हुए कुछ विद्वान ''ओउम्'' शब्द से संगीत की उत्पत्ति मानते हैं। 'ओउम्' शब्द से नाद, नाद से स्वर और स्वर से संगीत की उत्पत्ति हुई है।[6]

संगीत की स्वर लहरियों से न केवल देवी देवता, ऋषि मुनि व मनुष्य प्रभावित थे, बल्कि प्रकृति, पशु–पक्षी, पाषाण आदि पर भी संगीत का प्रभाव स्पष्ट होता है। संगीत की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों के अलग–अलग मत है। फारसी की एक कथानुसार– एक बार ''हजरत मूसा'' पैगम्बर नाव पर सैर कर रहे थे, तो उन्हें एक पत्थर दिखाई दिया। उसी समय एक फरिश्ता ब्राइल आया और उसने पैगम्बर से उस पत्थर को सदैव अपने पास रखने को कहा, एक दिन पैगम्बर जंगल में प्यास से व्याकुल थे। उन्होंने खुदा से प्रार्थना की और उसी समय पानी बरसना शुरू हो गया। पानी जब पत्थर पर गिरा, तो पत्थर के सात टुकड़े हो गये और सात टुकड़ों से पानी की सात धारायें बह निकलीं। इन सातों धाराओं से अलग–अलग सात स्वर निकले। कहा जाता है कि इन्हीं सात स्वरों से संगीत की स्थापना हुई।[7]

फारसी में एक और कथा भी है कि कोहकाफ पक्षी, जिसे अतिशीजन भी कहते हैं, उसकी चोंच में छेद होते हैं। उसमें से अलग–अलग सात स्वर निकलते हैं, और यही संगीत के सात स्वर हैं। संगीत पृथ्वी, आकाश, जल, पाषाण व प्रकृति के कण–कण में समाया हुआ है।

चार्ल्स डारूइन का कहना है कि पशु–पक्षियों की ध्वनियों के अनुकरण से मानव को संगीत मिला है, प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्फ्रेड आइंस्टाइन ने भी इस मत का समर्थन किया है। सात स्वरों की उत्पत्ति पक्षियों द्वारा भी मानी गयी है। जैसे– मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरी से गांधार, कौए से मध्यम, कोयल से पंचम, मेढ़क से धैवत तथा हाथी से निषाद् स्वर की उत्पत्ति हुई।[8]

सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानव का जन्म इस पृथ्वी पर हुआ तो वह पेड़ों पर पक्षियों की तरह रहता था। पेड़ों पर ही भोजन करता था और पेड़ों पर ही सोता था। पक्षीगण व जंगली जानवर उसके प्रिय साथी थे। उनकी नाना प्रकार की बोलियों को वह अपने कण्ठ से निकालता और अपना मनोरंजन किया करता था।

मनुष्य ने संगीत की प्रेरणा ''बुलबुल'' नामक चिड़िया से भी पायी। यह ऐसी चिड़िया थी, जो बहुत सुन्दर गाती थी। इसलिए इसका नाम ''बुलबुल'' रखा गया, जो भी सुन्दर गाता है, उसको भी 'बुलबुल' की सुन्दर उपाधि से सुशोभित किया जाता है।

सर जेम्स जीन्स ने अपनी पुस्तक **'साइन्स एण्ड म्यूजिक'** में लिखा है कि– ''संगीत का विकास पशु–पक्षियों से लेकर मनुष्य तक में लगातार होता चला आया है। इस प्रकार मनुष्य को संगीत की प्रेरणा पशु–पक्षियों से ही प्राप्त हुई है।''

उक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में मनुष्य की सीखने की स्वाभाविक प्रतिक्रिया ने उसे प्रकृति व पशु–पक्षियों की नकल व फिर उसे सुधार कर संगीत की ओर अग्रसर किया होगा। जैसे–जैसे ध्वनि का समृद्ध रूप भाषा का सहारा पाकर निखरा तब उसे संगीत की संज्ञा दी गई तथा उसके उतार–चढ़ाव की प्रक्रिया को आरोही–अवरोही की संज्ञा दी गई। ध्वनि के भिन्न–भिन्न स्वर को उसकी उच्चता के अनुसार अलग अलग नाम दिये गए। जैसे– षड्ज (सा), ऋषभ (रे), गांधार (ग), मध्यम (म), पंचम (प),धैवत (ध), और निषाद् (नि)। इन्हीं स्वरों पर सम्पूर्ण संगीत टिका है।

संगीत कला का पल्लवन जनजीवन के माध्यम से निरन्तर होता आया है, तथा मानव की तीव्रानुभूतियों की अभिव्यक्ति इसकी जननी रही है। मानव मन के विकास के साथ–साथ संगीत का विकास होता रहा है। संगीत व संस्कृति का विकास नित नवीन सृष्टि वैचित्र्य के साथ आगे बढ़ता रहा है।

यह सर्वविदित है कि संगीत का प्रभाव विद्वान, पशु, मानव आदि पर पड़ता है तथा संगीत का मुख्य उद्देश्य जनरंजन है। बदलते समय, बदलती मान्यताओं और बदलती जनरुचियों का प्रभाव भी संगीत पर निरन्तर पड़ता रहा है। संगीत प्राचीनतम् सांस्कृतिक कला होते हुए भी चिरनूतन लगती है तथा यह कला आज भी विकास की ओर अग्रसर है।

सन्दर्भ :–

1 मित्तल अंजलि, भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पृ0 55

2 सिंह डॉ0 ठाकुर जय देव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 3

3 सिंह डॉ0 ठाकुर जय देव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 4

4 संगीत दपर्ण, श्लोक, 14,15, पृ0 4

5 संगीत दपर्ण, श्लोक, 14,15, पृ0 4

6 मिश्र लालमणि, भारतीयसंगीत वाद्य, पृ0 5

7 वही पृ0 5

8 **षड्जं वदति मयूरः पुनः स्वरमृषभ चातको ब्रुते।**
गान्धाराख्यं छागो निगदति च मध्यमं क्रौंचः
गदति पंचममचिंतवाक् पिको रटति धैवतमुन्मददर्दुरः
शृणि समा हतमस्त ककुजंरो गदति नासिकया स्वरमत्तिमम्।। संगीत दर्पण